मण्डल सिद्धान्त अथवा अन्तर्राज्यीय सम्बन्ध

Topic- Inter-state relations

Badar **Ara**

Professor

Dept. of A.I.H. & Archaeology,

Patna University, Patna-800005

Mobile :- 9431877688

P.G./ M.A. IVth **Semester ,**

Dept. of A.I.H.& Archaeology. Patna University

Paper- Ancient Indian Polity (E.C.)

वैदिक युग का भारत जनजातियों के रूप में अनेक राज्यों में विभक्त था साम्राज्य विस्तार की लिप्सा को धार्मिक कर्मकाण्डों से बरल मिला। उदाहरणतया 'अश्वमेध यज्ञ' का अनुष्ठान करने से कोई शासक राजाओं का राजा बनता था। 'वाजपेय यज्ञ'.करने से राजा को सम्राट् पद मिलता था। इस प्रकार की विचार धारा. से प्रेरित होकर शक्तिमान राजा अपने पड़ोसी.राज्य पर आक्रमण करते थे। समीपवर्ती अन्य राज्य तथा दूरस्थ राज्यों की भी ऐसे अवसर पर महत्वपूर्ण भूमिका होती थी।

प्राचीन भारत में लगभग सभी राजशास्त्रप्रणेताओं ने राज्य की बाह्य नीति का प्रमुख आधार मण्डल-सिद्धान्त माना है। कौटिल्य, मनु, आश्रमवासिक पर्व, याज्ञवल्क्य स्मृति कामन्दकीय.नोतिसार, अग्नि पुराण, विष्णुधर्मोतर,. नीतिवाक्यामृत, राजनीतिप्रकाश, नीतिमयूख आदि ने मण्डलसिद्धान्त पर विस्तृत सामग्री प्रदान की है। इनमे कौटिल्यीय अर्थशास्त्र सम्भवत: प्राचीनतम है। कामन्दक ने

मण्डल सिद्धान्त का वर्णन करते हुए विविध राज्यमण्डलों का उल्लेख किया.है और उनके विशेष लक्षणों का भी संक्षेप में वर्णन किया है। ।

सामान्य रूप से मण्डल के अन्तर्गत बारह राजाओं का अस्तित्व माना जाता है। इसमें केन्द्र में 'विजिगीषु' होता है। विजय की अभिलाषा से युक्त अथवा विजय करने वाले राजा को विजिगीषु की संज्ञा दी गयी है। अर्थशास्त्र में यह कहा गया है' कि जो राजा आत्मसंपत्र, अमात्य आदि द्रव्यप्रकृति सम्पन्न और नीति का आश्रय लेने वाला हो उसको विजिगीषु कहते हैं। कामन्दक ने विजिगीषु को परिभाषा निम्न प्रकार से दी है : 'जो अपने राज्य का विस्तार करना चाहता है, जो राज्य के सातों तत्वों से सम्पन्न है, जो महोत्साही है और जो उद्योगशील है, वह विजिगीषु कहलाता है।'

वस्तुत: आदर्श राजा वही है जो विजय की कामना से प्रेरित होता हुआ अपने दुर्बल पडोसियों का दमन करता रहे।

विजिगीषु के अग्रभाग, पृष्ठ भाग, दूर एवं सीमा से कुछ अंशों तक मिले हुए राज्यों के अलग-अलग नामों एवं उनकी भूमिका को अग्रांकित प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

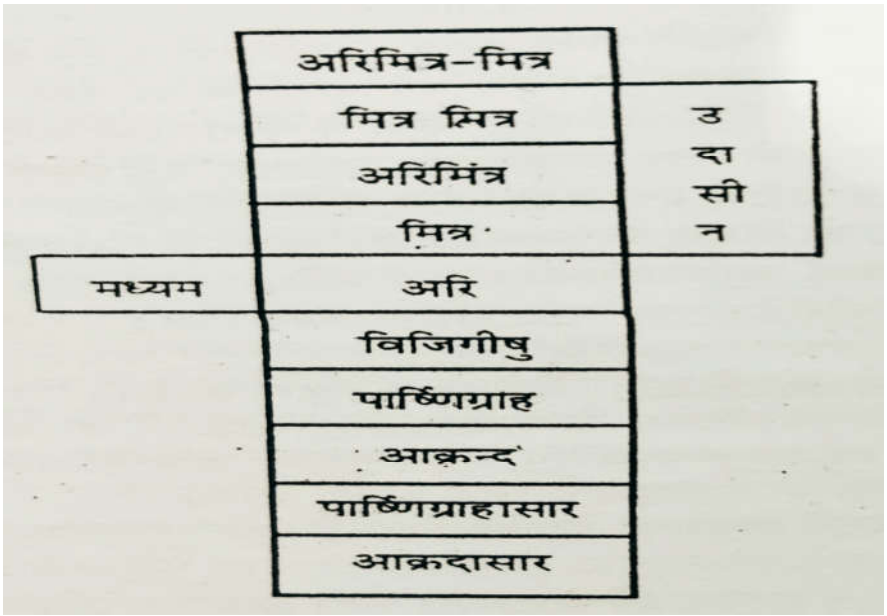

यह उल्लेखनीय है कि नियमत: पड़ोसी राजा का 'अरि' या शत्रु होना आवश्यक नहीं है। परन्तु अधिकांशत: पड़ोसी राजा अरि हो जाते हैं। नीतिवाक्यामृत के अनुसार सान्निध्य एवं दूरी शत्रुता एवं मित्रता के कारण नहीं हैं, बल्कि उद्देश्य ही मुख्य है जिसके फलस्वरूप शत्रु या मित्र बनते हैं। शत्रु चार प्रकार के बताए गए हैं : यातव्य, उच्छेद्य, पीडनीय, कर्शनीय यातव्य वह शत्रु हैं जो विपत्तियों में फँस गया है, उस पर आक्रमण किया जा सकता है। उच्छेद्य वह शत्रु है जिसका कोई आश्रय न शक्तिशाली दुर्ग या अच्छा मित्र हो या जिसका आश्रय दुर्बल है अत:.उसका नाश कर देना चाहिए। पीडनीय वह शत्रु है जिसके पास मन्त्र एवं शक्तिशाली सेना नहीं.है, उसे पीड़ित होना पड़ता है। कर्शनीय वह शत्रु है जिसके पास मन्त्र व सेना की प्रबलता होती है अत: उसे करशित किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त शत्रु व मित्र अन्य तीन प्रकार के भी हो सकते हैं : सहज, कृत्रिम, प्राकृत। माता-पिता के सम्बन्ध से प्राप्त मित्र सहज कहे जाते हैं। कृत्रिम मित्र वे हैं जो विजिगीषु अपने प्रयत्नों से प्राप्त करता है तथा प्राकृत मित्र वे हैं जो पड़ोसी राज्य की सीमा से सटे हों इसी प्रकार सहज शत्रु वह है जो अपने ही परिवार में जन्मा हो, कृत्रिम शत्रु वह है जो विरोधी है। तथा पड़ोसी राजा प्राकृत शत्रु है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण व अग्नि पुराण' के अनुसार प्राकृत वास्तव में कृत्रिम है।

विजिगीषु के अग्रभाग में पाँच राज्यों को कौटिल्य ने क्रमश: अरि, मित्र, अरिमित्र, तथा.अरिमित्रमित्र की संज्ञा दी है। इनके नामों का सम्बन्ध विजिगीषु के सम्बन्धों से है। जैसे विजिगीषु का अरि राज्य, पुन: विजिगीषु का मित्र राज्यु, तदुपरान्त विजिगीषु के अरि का मित्र राज्य, विजिगीषु के मित्र का मित्र राज्य तथा विजिगीषु के अरि के मित्र का मित्र राज्य।

विजिगीषु के पृष्ठ भाग में चार राज्यों को क्रमश: पार्षिणग्राह, आक्रन्द,

पार्षिणग्राहासार एवं आक्रन्दासार की संज्ञा दी गयी है। विजिगीषु राजा के सहित आगे-पीछे के राजाओं को मिलाकर।एक राजमण्डल कहलाता है। जब अरि विजिगीषु के सम्मुख रहता है तो विपरीत दिशा के राज्य का शासक पश्चात् होता हैं उसे पार्ष्णिग्राह कहा जाता है। पार्षिग्राह से तात्पर्य है कि वह राजा जो पीछे से विपत्ति उत्पन्न कर दे अथवा आक्रमण कर दे। पार्ष्णिग्राह को सीमा से लगा राज्य।आक्रन्द की कहा जाता।है। यह आक्रन्द राजा विजिगीषु का मित्र होता है। विजिगीषु आक्रन्द से सहायता प्राप्त करने की प्रार्थना कर सकता है। पार्ष्णिग्राहासार का राज्य आक्रन्द की राज्य सीमा से सटा रहता है। यह राजा पार्ष्णिग्राह का मित्र होता है। आक्रन्दासार का राज्य पाष्णिग्राहासार के राज्य की सीमा से सटा होता है। यह राजा आक्रन्द का मित्र होता है।

अरि और विजिगीषु राजाओं की संधि में संधि का समर्थक और विग्रह में विग्रह का समर्थक।राजा मध्यम कहलाता है। इसका राज्य विजिगीषु व अरि की राज्यसीमा से सटा होता है यह दोनों को सहायता दे सकता है अथवा दोनों के लिए विपति उत्पन्न कर सकता है। अरि, विजिगीषु और मध्यम की प्रकृतियों के अतिरिक्त, शक्तिशाली मध्यम राजा से भी बलवान, अरि, विजिगीषु और मध्यम की संधि में संधि का समर्थक और उनके विग्रह में विग्रह का समर्थक राजा उदासीन कहलाता है।

कौटिल्य एवं कामन्दक की मान्यता के विपरीत सोमदेव का मत है कि मध्यम राजा बह है। जो विजिगीषु एवं अरि दोनों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है किन्तु कतिपय कारणवश मध्यस्थता धारण किए रहता है। कामन्दक इसके ठीक विपरीत यह तर्क रखते हैं कि जब सम्पूर्ण लोक स्वार्थपरायण है तंब मध्यस्थता कैसे हो सकती है। मनुस्मृति में उदासीन राजा के निम्न गुण बताए गए हैं : आर्यता अथवा सज्जनता, पुरुषज्ञान, पराक्रम, दयालुता तथा।स्थूललक्षता। याज्ञवल्क्य की मिताक्षरा टीका में उदासीन राजा के निम्न तीन प्रकार बताए गए हैं : सहज, कृत्रिम व प्राकृत।

सहज एवं कृत्रिम उदासीन में न तो सहज शत्रु के लक्षण होते हैं और न सहज मित्र के। विजिगीषु के राज्य के पश्चात् दो राज्यों के बाद स्थित राज्य प्राकृत उदासीन कहा जाता हैं।

इस प्रकार विजिगीषु, अरि, मध्यम व उदासीन स्वतंत्र श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। विजिगीषु की मित्र श्रेणी के अन्तर्गत मित्र, मित्रमित्र, आक्रन्द, आक्रन्दासार तथा अरि श्रेणी के अन्तर्गत अरिमित्र, अरिमित्र-मित्र, पार्ष्णिग्राह, पार्ष्णिग्राहासार आते हैं । मनु ने मण्डल -सिद्धान्त के मूल में चार प्रकृतियों - विजिगीषु शत्र, मध्यम एवं उदासीन को रखा है।" कामन्दक ने नय के उद्घोष का उल्लेख।करते हुए कहा है कि मण्डल में ये ही चार पाए जाते हैं । कामन्दक के अपने मत से मण्डल।से मित्र, उदासीन एवं रिपु पाए जाते हैं। कौटिल्य के मत से उपर्युक्त बारह प्रकृतियां मण्डल में पायी जाती हैं।

कामन्दक ने मण्डल के तत्वों एवं राज्य के तत्वों के विविध सम्मिलनों के आधार पर विभिन्न -ग्रन्थकारों के मत दिए हैं, साथ ही यह भी बताया है कि इस प्रकार के सम्मिलनों से मण्डल 18, 26, 24,108 प्रकृतियों व अन्य सदस्यों का समावेश हो जाता है। मनु ने भी राज्यतत्वों को मण्डल के बारह सदस्यों से मिलाकर 72 संख्या बतायी है। कौटिल्य का भी यही मत है। कौटिल्य के अनुसार बारह राज-प्रकृतियां और साठ अमात्य आदि द्रव्य प्रकृतियाँ मिलकर बहत्तर प्रकृतियाँ कही जाती हैं ।

मनु ने इस बात की ओर निर्देश किया है कि राजा के साधन इस प्रकार व्यवस्थित होने चाहिए जिससे उसके मित्र, शत्रु, उदासीन उसको हानि न पहुँचा सके । मेघातिथि भी इससे सहमत प्रतीत होते हैं, उनके अनुसार स्वार्थ आ पड़ने पर मित्र भी शत्रु ही जाता हैं।

कौटिल्य ने मण्डल सिद्धान्त को शक्ति सिद्धान्त एवं षाड्गुण्य से सम्बन्धित किया है। राजा द्वारा उसकी शक्तियों के क्रियान्वयन पर ही राज्य का कल्याण सम्भव

है । महत्वाकांक्षी राजा को षड्गुणों का उपयोग करना चाहिए। संधि विग्रह, यान, आसन, संश्रय तथा द्वैधीभाव यह।छ: गुण हैं। इनमें दो राजाओं का कुछ शर्तों पर मेल हो जाना सन्धि, शत्रु का कोई उपकार करना विग्रह, उपेक्षा करना आसन, चढ़ाई करना यान, आत्मसमर्पण करना अथवा शक्तिशाली राजा के पास आश्रय लेना संश्रय तथा संधि-विग्रह दोनों से काम लेना ह्वैधीभाव कहलाता है।

कौटिल्य का मत है कि विजिगीषु राजा को चाहिए कि वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार सन्धि आदि छः गुणों में जिसको उचित समझे उसी को व्यवहार में लाए। उसके लिए उचित यही है कि बराबर तथा बड़ी शक्ति वाले राजा के साथ वह सन्धि कर ले; और शक्तिहीन के साथ।विग्रह कर दे। क्योंकि अधिक शक्तिशाली के साथ विग्रह करने पर शक्तिहीन राजा की बही दुर्दशा होती है जो कि गजारोही सैनिकों के साथ युद्ध में पैदल लड़ने वाली सेना की होती है। और समान बल-विक्रम वाले के साथ विग्रह करने पर वे दोनों ही उसी प्रकार नष्ट हो जाते हो जाते है। जैसे दो कच्चे घड़े आपस में भिंड जाने से दोनों ही नष्ट हो जाते हैं और हीन शक्ति के साथ विग्रह करने का वही सुपरिणाम होता है जो पत्थर के घड़े पर चोट मारने से होता है।